ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 120-121
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-II, Issues-17, YEAR- Sept. -2020

प्राचीन भारतीय लोकतांत्रिक सिद्धान्त : सम्प्रभुता

1. आशोक कुमार त्यागी 2. आशुतोष कुमार मिश्रा
1. शोध निर्देशक 2. शोध अध्येता– राजनीति विज्ञान, अध्ययनशाला जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म0प्र0), भारत

Received- 21.08.2020, Revised- 25.08.2020, Accepted - 28.08.2020 E-mail: - ashutoshm578@gmail.com

सारांश : ***प्राचीन भारत में विद्यमान लोकतांत्रिक सिद्धान्तों के विश्लेषणात्मक अध्ययन का प्रश्न है तो हम यह अभिनिर्धारित कर सकते है कि प्राचीन भारतीय राज्य व्यवस्था में सम्प्रभुता मूलभूत लोकतांत्रिक सिद्धान्त के रूप में विद्यमान था। जिसके आधार पर प्राचीन भारतीय लोकतंत्र एवं प्राचीन भारतीय लोकतांत्रिक संस्थाये निर्बाध रूप से अपने नैतिकता के पथ पर चल कर लोक कल्याण रूपी अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति मे समर्थ हो पाती थी। सम्प्रभुता वह शक्ति होती है जिसके आधार पर कोई राज्य अपने आन्तरिक एवं वाहय मामलों में बिना किसी हस्तक्षेप के अपने निर्णय स्वयं लेता है, तो राज्य के इस गुण को सम्प्रभुता कहते है। लोकतन्त्रीय शासन की स्थापना में सम्प्रभुता एक आवश्यक गुण माना जाता है। प्राचीन भारत में सम्प्रभुता का निवास राजा में माना गया था, राजा की सम्प्रभुता शक्ति ही राज्य का प्रतीक मानी जाती थी। वैदिक साहित्य में सम्प्रभुता के लिये समानार्थक शब्द क्षत्र अथवा क्षत्रसारी प्रयुक्त किये जाते है। अर्थशास्त्र, कानूनी संहिता एवं अन्य शिलालेखों में इसके लिये स्वामित्व शब्द का प्रयोग किया है। कौटिल्य ने राज्य के साप्तांग का वर्णन किया है, स्वामी को उसने राज्य का ही एक अंग माना है। डा.हरिश्चन्द्र शर्मा लिखते है कौटिल्य के अनुसार स्वामी को ये सारे अधिकार प्राप्त थे जो आधुनिक अर्थ में एक सम्प्रभु के पास होने चाहिये। स्वामी राज्य का मालिक होता था, वह अपने मंत्रियों, मित्रों, खजाने, सेना ,कानून एवं किलेबन्दी आदि साधनों की सहायता से राज्य पर अधिकार रखता था इन साधनों की स्थिति द्वारा उसकी स्वयं की स्थिति निर्धारित होती थी।***

कुंजीभूत शब्द– विद्यमान, लोकतांत्रिक, विश्लेषणात्मक, अभिनिर्धारित, सम्प्रभुता, मूलभूत, संस्थाये, निर्बाध रूप।

जो राजा राज्य का अध्यक्ष था उसे धीरे–धीरे नये अधिकार प्राप्त होते गये उसे शासन करने का दैवीय अधिकार प्रदान किया गया इससे सम्प्रभुता का क्षेत्र व्यापक हो गया। प्राचीन भारत के साम्राज्यों की प्रकृति आज के साम्राज्यों से भिन्न होती थी, उस समय की शब्दावली में उसे चक या अर्थशास्त्र की भाषा में मण्डल कहा जाता था। मण्डल का अर्थ है एक घेरा या प्रभाव का क्षेत्र, जिसके शीर्ष पर एक उच्चस्थ राजा राज्य करता था। ऐसे साम्राज्य में सम्प्रभुता का अर्थ केवल सर्वोच्चता से था। प्राचीन भारत में सम्प्रभुता की प्रकृति कुछ इस प्रकार की थी जिसमें चक्रवर्ती राजा को सर्वोच्च शक्ति के समरूप माना जाता था। वह चकवर्ती था, क्योंकि वह चक्र या मण्डल का स्वामी था, वह चक्र उस राजा का प्रभाव क्षेत्र या कौटिल्य के शब्दों में मण्डल कहलाता था।

वैदिक काल में राजा को जो कार्य सौपें गये थे उनको देखने से स्पष्ट होता है कि उस समय तक सम्प्रभुता का विचार विकसित हो चुका था, राजा युद्ध के समय नेतृत्व करता था तथा संकट के समय जनता की रक्षा करता था। वह लोगों से आज्ञाकारिता की अपेक्षा करता था और ऐसा करने के लिये मजबूर कर सकता था।

डा0जी0पी0 नेमा राजा की सम्प्रभुता शक्ति के विषय में लिखते है कि "वैदिक काल का राजा क्षत्रसारी के रूप में सम्प्रभुता सम्पन्न था। यह हमेशा एक रक्षक था। शान्ति व्यवस्था एवं जनजीवन की रक्षा को शाही सम्प्रभुता के औचित्य का कारण माना गया था, सम्प्रभुता का अर्थ था शक्ति, वह शक्ति जिसके आधार पर शासक कानून का पालन करा सके, राजा को आर्य संस्कृति की रक्षा का काम सौंपा गया था तॉकि वह विरोधियों की संस्कृति को प्रभावी होने से रोक सके।"

इस प्रकार जी.पी.नेमा का यह मानना है कि राजा के पास सम्प्रभुता शक्ति होने के कारण राजा का दायित्व था कि वह अपने शासन की रक्षा करें, वह शत्रुओं के विरूद्ध जनता को सुरक्षा प्रदान करे, राष्ट्र की रक्षा करे एवं शान्ति स्थापित करें।

प्राचीन विचारकों का यह मानना था कि राज्य का अस्तित्व ऐश्वर्य अथवा स्वामित्व (सम्प्रभुता) के वातावरण में ही रह सकता है। महाभारत के शान्ति पर्व में भीष्म तथा युधिष्ठर के मध्य सम्वाद के द्वारा हमें सम्प्रभुता की उत्पत्ति का प्राचीन भारतीय मत हमें ज्ञात हो सकता है।

प्राचीन भारतीय आचार्यो ने सम्प्रभुता की शक्ति

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-II, Issues-17, YEAR- Sept. -2020

को एक स्वभाविक संस्था माना है, जिसकी आज्ञा का पालन लोगों द्वारा अपनी इच्छानुसार किया जाता है, अपनी रक्षा के लिये लोग राजा की आज्ञाओं का पालन करते है आज्ञा पालन के पीछे कोई शक्ति या जोर–जवरदस्ती अथवा दण्ड का भय, प्राचीन आचार्य पूर्ण रूप से स्वीकार करने के पक्ष में दिखाई पड़ते है।

प्राचीन भारतीय मनीषियों का मत था कि सर्वोच्चता, निरंकुशता को जन्म देती है। अतः उनके विचारों में यह परिलक्षित किया गया है कि राजा को दी गई सम्प्रभुता की शक्ति सीमा रहित नहीं थी, उस पर कुछ धार्मिक, नैतिक एवं मर्यादा की सीमाये तय की गयी थी। इन सीमाओं ने निश्चित रूप से राजा को सर्वोच्च शक्ति प्राप्त होते हुये भी निरंकुशता के भंवर में फसनें से रोकें रखा। इन बन्धनों को डा0 हरिश्चन्द्र शर्मा ने सम्प्रभु का न्यायोचित कार्य करना, सामाजिक प्रयासों एवं रीतिरिवाजों का सम्मान, धार्मिक सीमायें, जाति व्यवस्था की सीमायें, लोकहित की सीमायें नाम प्रदान किया।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आधुनिक राजनैतिक सिद्धान्त सम्प्रभुता निश्चित रूप से प्राचीन भारतीय लोकतांत्रिक परम्पराओं को पूर्ण या आंशिक रूप से लोकतंत्रीय सिद्धान्तों के रूप में दिग्दर्शित कर रहा था एवं लोकतंत्रीय परम्परा को अक्षुण रखे हुये था।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डा. श्यामलेश कुमार तिवारी " अर्थशास्त्र" चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी 2017 ।
2. वाजपेयी राघवेन्द्र " वार्हस्पत्य राज्य व्यवस्था" चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी 1966 ।
3. आचार्य शिवराज " मनुस्मृति" चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी 2008 ।
4. शर्मा जे.पी. " प्राचीन भारत में गणतन्त्र" ग्रन्थ विकास, जयपुर 1966 ।
5. वर्मा वी.पी. "आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन" लक्ष्मी नारायण, आगरा 2010 ।
6. वर्मा हरिश्चन्द्र " प्राचीन भारतीय राजनीतिक संस्थाये" कॉलेज बुक डिपो, जयपुर 1996 ।
7. अल्टेकर ए.एस. "प्राचीन भारत में राज्य और सरकार" मोतीलाल बनारसीदास, पटना 1935 चतुर्थ संशोधित संस्करण 1970।
8. डा.परमात्मा शरण "प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार और संस्थायें" मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 1979।
9. डा.रामशरण शर्मा "प्राचीन भारत में राजनैतिक विचार एवं संस्थाए" राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1992।
10. शान्ति पर्व महाभारत।
11. अथर्ववेद।
12. शुक्रनीतिसार।
13. रामचरित मानस, गीता प्रेस, गोरखपुर।

*****

PIF/6.500 *ASVS Reg. No. AZM 561/2013-14*